आतापना योग : एक विशिष्ट जैन साधना

डॉ. सुनीता इन्दौरिया

सहायक आचार्य,
जैनविद्या एवं तुलनात्मक धर्म तथा दर्शन विभाग,
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं

सारांशिका

जैन परम्परा में अन्तिम पुरुषार्थ के रूप में मोक्ष को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। मोक्ष की प्राप्ति के साधन संवर और निर्जरा माने गये हैं। नये कर्मों के आगमन को रोकना संवर है और पुराने कर्मों का आंशिक क्षय निर्जरा है। इन दोनों का मुख्य साधन तपश्चर्या को माना गया है।

तप के बाह्य व आभ्यन्तर ये दो भेद प्रमुख हैं। इनमें बाह्य तप के छः भेदों में कायक्लेश की साधना परिगणित है। इस साधना के माध्यम से साधक की तितिक्षा एवं परिषह–जय की चर्या भी पूर्ण होती है। इसी साधना के अन्तर्गत 'आतापना योग' पद्धति का विशिष्ट स्थान है।

प्रस्तुत निबन्ध का उद्देश्य आतापना योग के सम्बन्ध में आगमोक्त सामग्री से पाठकों को परिचित कराना है। आतापना योग क्या है, आतापना योग की विधियां क्या हैं ? इससे क्या विशिष्ट फल प्राप्त हो सकता है, इसके विशिष्ट साधक कौन–कौन रहे हैं–इत्यादि जिज्ञासाओं का समाधान इस निबन्ध के द्वारा किया जाएगा।

प्रमुख शब्द : तप, कायक्लेश, आतापना योग।

भूमिका

सांसारिक दुःखों से छूटकर परम आनन्दमयी स्थिति की प्राप्ति ही मोक्ष है। मोक्ष को भारतीय संस्कृति में परम पुरूषार्थ माना गया है। जैन परम्परा में सभी तीर्थंकरों के उपदेश का सार है–मोक्ष और उसका फल (मोक्ष)[1]। मोक्ष का अर्थ है–समस्त कर्म–बन्धनों से छूट जाना[2]। उत्तराध्ययन में सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र व तप–इन चारों को मोक्षमार्ग के रूप में निरूपित किया गया है[3]। वस्तुतः मोक्ष साधना के दो प्रमुख द्वार हैं–संवर व निर्जरा[4]। संवर से तात्पर्य है–कर्मो के आगमन को रोकना और निर्जरा का अर्थ है–पुरातनबद्ध कर्मों का आंशिक क्षय। 'तप' में संवर व निर्जरा दोनों की शक्ति निहित है[5]। अतः जैन परम्परा में तप को विशिष्ट महत्त्व दिया गया है।

तप का अर्थ है–इच्छाओं का निरोध अथवा पांचों इन्द्रियों व मन का संयम। आचारांग निर्युक्ति में कहा गया है कि जैसे मैला वस्त्र जल आदि शोधक द्रव्यों से उज्ज्वल हो जाता है, वैसे ही तप के द्वारा कर्म–मल से मुक्त होकर आत्मा शुद्ध व पवित्र बन जाती है[6]।

कायक्लेश : विशिष्ट तपश्चर्या

तप के बाह्य व अन्तरंग–ये दो प्रमुख भेद हैं। इनमें से प्रत्येक के 6–6 भेद इस प्रकार हैं[7]– बाह्य तप के छः भेद हैं– 1. अनशन, 2. अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, 4. रसपरित्याग, 5. विविक्तशय्यासन, 6. कायक्लेश।

आभ्यन्तर तप के छः भेद हैं– 1. प्रायश्चित्त, 2. विनय, 3. वैयावृत्त्य, 4. स्वाध्याय, 5. व्युत्सर्ग, 6. ध्यान।

बाह्य तप में परिगणित कायक्लेश की साधना का विशिष्ट महत्त्व है। काय–क्लेश में शरीर–क्रियाओं का महत्त्व है। कायक्लेश से तितिक्षा का भाव प्रखर बनता है। तितिक्षा साधक का परम धर्म कहा गया है। साधक होकर जो तितिक्षु नहीं है या सहिष्णु नहीं है, कष्टों में धैर्य नहीं रख सकता तो वह साधना नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त, परिषह–जय की महत्ता भी शास्त्रों में प्रतिपादित की गई है[8]। मोक्षमार्ग से साधक भ्रष्ट न हो और कर्मों की निर्जरा करता हुआ आगे बढ़ता रहे, इस दृष्टि से परिषह–जय का अत्यधिक महत्त्व माना जाता है[9]। परीषह–जय की सिद्धि में उक्त कायक्लेश की उपादेयता स्पष्ट है।

कायक्लेश तप : आतापना

तपश्चर्या के साधन 'कायक्लेश' तप का ही एक भेद आतापना है। आतापना के लिए आगमों में भी प्रेरित किया गया है। दशवैकालिक सूत्र[10] में कहा गया है– 'आयावयाहि चय सोगमल्लं' अर्थात् सुकुमारता का त्याग कर, शरीर को आतापना से तपाओ।

आतापना का अर्थ है : 'सूर्य का ताप सहना'। यह सूर्य की रश्मियों को जगाने की प्रक्रिया है, इसलिए यह योग है।

ज्ञातव्य है कि सूर्य की उष्णता को सहन करने से सम्बन्धित अनेक गमनयोग भी शास्त्रों में निरूपित किये गये हैं[11]–

1. अनुसूर्यगमन, 2. प्रतिसूर्यगमन, 3. ऊर्ध्वगमन, 4. तिर्यक्सूर्यगमन, 5. अन्यग्रामगमन, 6. प्रत्यागमन।

कायक्लेश तप की साधना के अनेक रूप, अनेक प्रकार शास्त्रों में बताये गये हैं। स्थानांग सूत्र[12] में कायक्लेश के सात (7) भेद किये गये हैं, और उसी के विस्तार रूप में औपपातिक सूत्र[13] में कायक्लेश के निम्नलिखित 10 भेदों में आतापना का भी निर्देश प्राप्त होता है–

1. ठाणट्ठिए (कायोत्सर्ग), 2. उक्कुडुयासणिए (उत्कुटुक आसन में बैठना), 3. पडिमट्ठाई (प्रतिमा धारण करना), 4. वीरासणिए (वीरासन में स्थित रहना), 5. नेसज्जिए (पालथी लगाकर स्थिर बैठना), 6. आयावए (आतापना लेना), 7. अवाउडए (वस्त्र आदि का त्याग), 8. अकंडुयए (शरीर पर खुजली न करना), 9. अणिट्ठूहए (थूक भी नहीं थूकना), 10. सव्वगायपरिकम्म– विभूसविप्पसुक्के (शरीर की देखभाल न करना, विभूषा से रहित होना)।

औपपातिक वृत्ति[14] के अनुसार आतापना के तीन प्रकार हैं– (1) निपन्न (सोकर ली जाने वाली आतापना उत्कृष्ट), (2) अनिपन्न (बैठ कर ली जाने वाली आतापना मध्यम), (3) ऊर्ध्वस्थित (खड़े होकर ली जाने वाली आतापना–जघन्य)।

बृहत्कल्पभाष्य[15] में 'आतापना योग' को तीन प्रकार का कहा गया है–1. उत्कृष्ट (गर्म शिला आदि पर लेट कर ताप सहना) 2. मध्यम (बैठ कर ताप सहना), 3. जघन्य (खड़े रहकर ताप सहना)।

उत्कृष्ट आतापना के भी तीन प्रकार हैं–

1. उत्कृष्ट–उत्कृष्ट–छाती के बल लेट कर ताप सहना।
2. उत्कृष्ट–मध्यम– दाएं या बाएं से लेट कर ताप सहना।
3. उत्कृष्ट–जघन्य– पीठ के बल लेट कर ताप सहना।

मध्यम आतापना के भी तीन भेद इस प्रकार हैं–

1. मध्यमउत्कृष्ट–पर्यंकासन में बैठकर ताप सहना।
2. मध्यममध्यम– अर्धपर्यंकासन में बैठ कर ताप सहना।
3. मध्यमजघन्य– उकडू आसन में बैठ कर ताप सहना।

जघन्य आतापना के भी तीन भेद इस प्रकार हैं–

1. जघन्यउत्कृष्ट–एक पैर को पसार कर ताप सहना।
2. जघन्यमध्यम– एक पैर के बल खड़े रहकर ताप सहना।
3. जघन्यजघन्य– दोनों पैरों को समश्रेणि में रख कर खड़े–खड़े ताप सहना।

वैदिक सूर्योपासना एवं पंचाग्नि तप

वैदिक परम्परा में सूर्योपासना एवं पंचाग्नि तप का विशेष महत्त्व रहा है चूंकि सूर्य की किरणों को अग्नि का ही एक रूप माना जाता था। इस दृष्टि से पंचाग्नि तप के अन्तर्गत सूर्योपासना ही की जाती थी।

सूर्योपासना के अनेक उदाहरण महाभारत में मिलते हैं। प्राचीन काल में कुरूराज संवरण ने सूर्य की आराधना की थी।[16] पौरवाह्निक नित्यक्रियायें सम्पन्न करके श्रीकृष्ण सूर्य की उपासना करते थे।[17] शरशय्या पर सोते हुए भीष्म ने सूर्य भी उपासना की थी।[18] सूर्योपासना के आधार पर प्राचीन भारत में 'सौर सम्प्रदाय' विकसित हुआ था। विदेशों में कहीं–कहीं सूर्य–पूजा प्रचलित थी। सिकन्दर स्वयं सूर्य का उपासक था। उसने भारत पर विजय की आशा से उगते हुए सूर्य की पूजा की और अपनी कामना पूर्ण करने के लिए निवेदन किया। सूर्य–पूजा का प्रसार एशिया माइनर से रोम तक था।[19] इस प्रकार पंचाग्नि तप भी उक्त सूर्योपासना का ही एक भेद माना जा सकता है।

आतापना योग विधि

जैन परम्परा में उपास्य देवों में सूर्य की गणना नहीं होती है। अतः आतापना योग को सूर्योपासना नाम नहीं दिया जा सकता। किन्तु, सूर्य के उग्र आताप में रह कर की जाने वाली आतापना को एक विशिष्ट साधना कहा जा सकता है।

प्राचीन काल में अनेक जैन मुनि सूरज की किरणों से तपी हुई शिला या धूलि पर लेटकर आतापना लेते थे। इसी प्रकार ग्राम या सन्निवेश के बाहर, आतापना भूमि में दोनों भुजाएं ऊपर उठाकर सूर्य के सम्मुख खड़े होकर आतापना लेने की परम्परा प्रवर्तित रही है। आतापना तप में समपादिका, उत्तानशयन, पर्यंकासन आदि आसनों का भी यथाशक्ति प्रयोग किया जाता रहा है। इनमें भूमि पर लेट कर ली जाने वाली आतापना को उत्कृष्ट साधना बताया गया है। भूमि पर लेट कर ली जाने वाली आतापना से शरीर के सारे अंग प्रकृष्ट रूप से तप्त हो जाते हैं। भूमि सूर्य की रश्मियों से अत्यन्त तापित होती है, उस पर वायु का संचरण नहीं होता ऐसी स्थिति में शरीर के किसी भी अवयव को ताप से विश्राम नहीं मिलता है।

आतापना योग से लाभ

आतापना योग से परीषह–जय व तितिक्षा शक्ति की साधना पुष्ट होती ही है, इसका विशिष्ट व प्रत्यक्ष लाभ तेजोलेश्या की सिद्धि होना बताया गया है। मंखलिपुत्र गोशालक द्वारा तेजोलेश्या की प्राप्ति कैसे होती है। इस प्रकार की जिज्ञासा के समाधान हेतु भगवान् महावीर ने गोशालक को 'आतापना विधि' इस प्रकार बताई थी–'' जो एक मुट्ठीभर कुल्माषपिंड खाता है, एक चुल्लू भर पानी पीता है, निरन्तर बेले–बेले की तपस्या करता है, आतापना भूमि में सूर्य के सामने दोनों भुजाएं ऊपर उठाकर आतापना लेता है, वह छः मास के अंतराल में संक्षिप्त व विपुल तेजोलेश्या वाला हो जाता है।''[20]

ठाणं[21] में भी तेजोलेश्या की उपलब्धि के तीन हेतुओं में 'आतापना' का भी परिगणन किया गया है।

इसी प्रकार, पुद्गल परिव्राजक भी आतापना योग की निरन्तर साधना करता था, जिसके फलस्वरूप उस विशिष्ट अतीन्द्रिय ज्ञान अर्थात् 'विभंग ज्ञान' प्राप्त हुआ था। इस ज्ञान के सामर्थ्य से वह ब्रह्मलोक तक के देवों की स्थिति को जानने–देखने में समर्थ हो गया था।[22]

आतापना का प्रयोग अर्थात् सूर्य की किरणों से प्राप्त ऊष्मा का वैज्ञानिक महत्त्व भी है। वैज्ञानिक दृष्टि से सूर्य की किरणें मानव के शरीर और मस्तिष्क को स्वस्थ और पुष्ट रखती हैं। ये रोग–निवारक होने के साथ–साथ, कीटाणु–नाशक भी होती हैं। डॉ. चाल्स एफा हेलेन तथा लन्दन के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. डब्ल्यू एम. फ्रेजर का मत है कि संसार में जितनी शक्तियां विकसित हैं, वे सब सूर्य के कारण ही हैं।

पिछले कुछ दशकों में 'सूर्य किरण चिकित्सा' (आतापना योग) के आश्चर्यकारी परिणाम सामने आये हैं। डॉ. हेगेन का अभिमत है कि रक्त का पीलापन, पतलापन, लोहतत्त्व की कमी, कमजोरी, पेशियों की शिथिलता, थकान आदि रोगों में सूर्य की सहायता से उपचार करना सरल है। सूर्य की रश्मियों से शरीर की प्रतिरोधात्मक शक्ति बढ़ती है।[23]

आतापनायोग के महान् साधक

आतापना योग की विधि द्वारा साधना करने वाले प्राचीन साधकों का वर्णन शास्त्रों में मिलता है–भगवान् महावीर ग्रीष्म ऋतु में सूर्य का आतप लेते थे। वे ऊकडू आसन में वायु के अभिमुख होकर बैठते थे।[24] भगवान् महावीर विहार कर करते हुए कूर्मग्राम पधारे। कूर्मग्राम के बाहर वैश्यायन नामक तापस द्वारा प्राणामा प्रव्रज्या स्वीकार कर सूर्यमण्डल के सम्मुख दृष्टि केन्द्रित कर दोनों हाथ ऊपर उठाये आतापना लेने का उल्लेख मिलता है।[25] परिव्राजक पुद्गल द्वारा भी निरन्तर आतापना विधि के सेवन किये जाने का उल्लेख मिलता है।[26] इसी तरह श्रेणिक राजा का पुत्र मेघकुमार भी प्रव्रजित होकर, आतापना विधि का सेवन करता था।[27] आर्या सुकुमालिका ने आर्या गोपालिका के समक्ष आतापना विधि की साधना हेतु अपनी इच्छा इस प्रकार व्यक्त की थी। आर्ये! मैं चाहती हूं, आपसे अनुज्ञा प्राप्त कर चम्पानगरी के बाहर सुभूमिभाग उद्यान के परिपार्श्व में निरन्तर बेले–बेले की तपस्या के साथ सूर्याभिमुख हो, आतापना लेती हुई विहार करूं।[28]

श्रमण परम्परा में प्रभावकारी सम्प्रदाय आजीवक सम्प्रदाय रहा है। इस सम्प्रदाय के आचार्य गोशालक थे। आजीवक भिक्षुओं द्वारा पंचाग्नि तप के अन्तर्गत आतापना योग विधि के सेवन का विवरण मिलता है।[29]

आवश्यक निर्युक्ति में भी मुनि कूलवाल द्वारा तापस आश्रम में रहते हुए नदी तट पर आतापना विधि सेवन का उल्लेख मिलता है।[30]

तेरापंथ परम्परा में आतापना योग के साधक

आचार्य भिक्षु निर्जल उपवास करते, सहयोगी संतों के साथ धर्मोपकरण साथ लेकर प्रायः गांव के बाहर चले जाते। वे अत्युष्ण रेतीली धरती पर लेट जाते, आतापना के साथ–साथ ध्यान–स्वाध्याय भी करते। पारणे के दिन गांव से यथाप्राप्त आहार–पानी लेकर जंगल में जाते, वृक्ष की छाया में आहार पानी रखकर आतापना लेते, फिर आहार करते। लगभग दो वर्ष तक यह क्रम चला[31] था।

इसी परम्परा के तपस्वी मुनि सुखलालजी भी ग्रीष्म ऋतु में लगभग सात माह तक दोपहर में राजस्थान की कड़ी धूप में आतापना लेते–एक कछोटा

लगाकर आंखों पर पट्टी बांधकर दो–दो घण्टे तक (कभी–कभी पांच घण्टे भी) शिलापट्ट पर लेते रहते। उत्कृष्ट गर्मी के कारण शिलापट्ट पसीने से ठण्डा हो जाता तो वे बीच–बीच में पार्श्ववर्ती दूसरे पत्थर पर लेट जाते। लेटे–लेटे स्वाध्याय में लीन हो जाते। प्रतिवर्ष आतापना काल में डेढ–दो लाख गाथाओं का स्वाध्याय कर लेते। कभी–कभी वे कहते–'आज तो श्रुतपरावर्त्तना में इतनी तन्मयता आ गई कि आतप का पता ही नहीं लगा, नींद भी आने लगी। सूर्य का ताप सहते–सहते उनके शरीर की चमड़ी सूखकर काली हो गई, किन्तु मन की प्रसन्नता व मुख की आभा निरन्तर वृद्धि होती रही[32] (यह क्रम वि.स. 2000 से 2016 तक चला)।

उपसंहार

कायक्लेश तप के रूप में आतापना योग का एक विशिष्ट स्थान है। इससे अनेक सिद्धियां प्राप्त हो सकती हैं। वैदिक परम्परा में यही 'पंचाग्नि तप' के नाम से प्रसिद्ध था। वैज्ञानिक दृष्टि से भी इसकी महत्ता प्रमाणित होती जा रही है। तीर्थंकर महावीर स्वयं भी इसका सेवन करते थे और उनके अनुयायियों में भी अनेक ऐसे साधक हुए हैं जो आतापना योग की साधना करते थे। तेरापंथ परम्परा में भी इसे विशिष्ट सम्मान दिया जाता रहा है।

संदर्भ स्थल

1. मूलाचार, 202.
2. तत्त्वार्थसूत्र, 10/2.
3. उत्तराध्ययन, 28/2.
4. तत्त्वार्थसूत्र, 10/2.
5. तत्त्वार्थसूत्र, 9/3.
6. आचारांग निर्युक्ति, 282.
7. तत्त्वार्थसूत्र, 9/19.
8. तत्त्वार्थसूत्र, 9/2.
9. तत्त्वार्थसूत्र, 9/8.
10. दशवैकालिक सूत्र, 2/5.
11. मूलाराधना, 3/224.
12. स्थानांगसूत्र, 7/554.
13. औपपातिक सूत्र, 30.

14. औपपातिक वृत्ति, पत्र 75, 76.
15. बृहत्कल्पभाष्य, 5945–5948.
16. महा. आदिपर्व, 171/12.
17. महा. उद्योगपर्व, 83/9.
18. महा. भीष्म पर्व, 120/54.
19. प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, पृ. 456 का टिप्पण
20. भगवतीसूत्र, 15/70 तथा आवश्यक चूर्णि, भाग–1, पृ. 298, 299; आवश्यक नि. 308.
21. स्थानांगसूत्र, 3/386.
22. भगवतीसूत्र, 11/12/186–187.
23. बृहत्कल्पभाष्य भूमिका, पृ. 19.
24. आयारो, 1/9/4/4.
25. आवश्यक चूर्णि, पृ. 298–299.
26. भगवती सूत्र, 11/12/186–187.
27. नायाधम्मकहाओ, 1/1/200.
28. नायाधम्मकहाओ 16/106.
29. स्थानांग सूत्र, 4/350 पर टिप्पण.
30. आवश्यक निर्युक्ति, कथा, परिशिष्ट, पृ. 513.
31. शासनसमुद्र, भाग–1, पृ. 103.
32. शासनसमुद्र, भाग 14,पृ. 104, 106.

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. **आयारो** (प्रथम श्रुतस्कन्ध)–वाचनाप्रमुख : आचार्य तुलसी, संपा. मुनि नथमल, जैन विश्वभारती प्रकाशन, लाडनूं, वि.सं. 2031.
2. **ठाणं**–वाचनाप्रमुख : आचार्य तुलसी, संपा. मुनि नथमल, जैन विश्वभारती, लाडनूं, वि.सं. 2033.
3. **भगवई (खण्ड–3)**–वाचनाप्रमुख : आचार्य तुलसी, संपा. आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्वभारती, लाडनूं, ई. 2005.
4. **भगवई (खण्ड–4)**–वाचनाप्रमुख : आचार्य तुलसी, संपा. आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्वभारती, लाडनूं, ई. 2007.

5. **तत्त्वार्थसूत्र (व्याख्या)**—उपा.श्रुतसागर मुनिराज, श्री श्रुतविद्या प्रकाशन, दिल्ली, ई. 2002.
6. **उत्तरज्झयणाणि (खण्ड—4)**—वाचनाप्रमुख : आचार्य तुलसी, संपा. आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्वभारती, लाडनूं, ई. 2006.
7. **नायाधम्मकहाओ**—वाचनाप्रमुख : आचार्य तुलसी, संपा. आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्वभारती, लाडनूं, द्वितीय संस्करण, ई. 2003.
8. **मूलाचार (वट्टकेर आचार्य),** —पूर्वार्द्ध—उतरार्द्ध, संपात्र सिद्धान्ताचार्य, पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री आदि, हिन्दी टीका—आर्यिका माताजी, प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, ई. 1984—1986.
9. **बृहत्कल्पभाष्य (भाग—1, 2)**—वाचनाप्रमुख : गणाधिपति तुलसी, संपा. आचार्य महाप्रज्ञ, अनु. मुनि दुलहराज, जैन विश्वभारती, लाडनूं, ई. 2007
10. **औपपातिक सूत्र**—अनुवादक. डॉ. छगनलाल शास्त्री, श्री आगमप्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान) ई. 1982.
11. **आवश्यकनिर्युक्ति (खण्ड—1)**— संपादक—डॉ समणी कुसुमप्रज्ञा, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं, ई. 2001.
12. **प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका**— डॉ. रामजी उपाध्याय, देवभारती प्रकाशन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, ई. 1966
13. **दसवेआलियं**—वाचना प्रमुख : आचार्य तुलसी, संपा. मुनि नथमल, जैन विश्वभारती, लाडनूं, ई. 1974.